''इस सम्बन्ध में पं० सुखलाल जी ने ज्ञानबिन्दु की परिचयात्मक प्रस्तावना में, यह बतलाते हुए कि 'निश्चयद्वात्रिंशिका के कर्ता सिद्धसेन ने मति और श्रुत में ही नहीं, किन्तु अवधि और मनःपर्याय में आगमसिद्ध भेद-रेखा के विरुद्ध तर्क करके उसे अमान्य किया है' एक फुटनोट द्वारा जो कुछ कहा है, वह इस प्रकार है—

''यद्यपि दिवाकरश्री (सिद्धसेन) ने अपनी बत्तीसी (निश्चय. १९) में मति और श्रुत के अभेद को स्थापित किया है, फिर भी उन्होंने चिरप्रचलित मति-श्रुत के भेद की सर्वथा अवगणना नहीं की है। उन्होंने न्यायावतार में आगमप्रमाण को स्वतन्त्ररूप से निर्दिष्ट किया है। जान पड़ता है इस जगह दिवाकरश्री ने प्राचीन परम्परा का अनुसरण किया और उक्त बत्तीसी में अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त किया। इस तरह दिवाकरश्री के ग्रन्थों में आगमप्रमाण को स्वतन्त्र अतिरिक्त मानने और न माननेवाली दोनों दर्शनान्तरीय धाराएँ देखी जाती हैं, जिनका स्वीकार ज्ञानबिन्दु में उपाध्याय जी ने भी किया है।''(पृ. २४)।

''इस फुटनोट में जो बात निश्चयद्वात्रिंशिका और न्यायावतार के मति-श्रुत-विषयक विरोध के समन्वय में कही गई है, वही उनकी तरफ से निश्चयद्वात्रिंशिका और 'सन्मति' के अवधि-मनःपर्यय-विषयक विरोध के समन्वय में भी कही जा सकती है और समझनी चाहिये। परन्तु यह सब कथन एकमात्र तीनों ग्रन्थों की एककर्तृत्व-मान्यता पर अवलम्बित है, जिसका साम्प्रदायिक मान्यता को छोड़कर दूसरा कोई भी प्रबल आधार नहीं है और इसलिये जब तक द्वात्रिंशिका, न्यायावतार और सन्मतिसूत्र तीनों को एक ही सिद्धसेनकृत सिद्ध न कर दिया जाय, तब तक इस कथन का कुछ भी मूल्य नहीं है। तीनों ग्रन्थों का एक-कर्तृत्व अभी तक सिद्ध नहीं है, प्रत्युत इसके द्वात्रिंशिका और अन्य ग्रन्थों के परस्पर विरोधी कथनों के कारण उनका विभिन्नकर्तृक होना पाया जाता है। जान पड़ता है कि पं० सुखलाल जी के हृदय में यहाँ विभिन्न सिद्धसेनों की कल्पना ही उत्पन्न नहीं हुई और इसीलिये वे उक्त समन्वय की कल्पना करने में प्रवृत्त हुए हैं, जो ठीक नहीं है, क्योंकि सन्मति के कर्ता सिद्धसेन-जैसे स्वतन्त्र विचारक यदि निश्चयद्वात्रिंशिका के कर्ता होते, तो उनके लिए कोई वजह नहीं थी कि वे एक ग्रन्थ में प्रदर्शित अपने स्वतन्त्र विचारों को दबाकर दूसरे ग्रन्थ में अपने विरुद्धपरम्परा के विचारों का अनुसरण करते, खासकर उस हालत में जब कि वे **सन्मति** में उपयोग-सम्बन्धी युगपद्वादादि की प्राचीन परम्परा का खण्डन करके अपने अभेदवाद-विषयक नये स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करते हुए देखे जाते हैं, वहीं पर वे श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान-विषयक अपने उन स्वतन्त्र विचारों को भी प्रकट कर सकते थे, जिनके लिये ज्ञानोपयोग का प्रकरण होने के कारण वह स्थल (सन्मति का द्वितीय काण्ड) उपयुक्त भी था, परन्तु वैसा न करके उन्होंने वहाँ उक्त द्वात्रिंशिका के विरुद्ध अपने विचारों को रक्खा है और इसलिये उस पर से यही फलित होता

Scanned with OKEN Scanner